DEV SANSKRITI: Interdisciplinary International Journal (2016), 8, 63-72

विचार क्रान्ति का नया जीवन दर्शन– युग निर्माण सत्संकल्प

राकेश वर्मा

सारांश

विचारों को चेतन शक्ति कहा गया है। मनुष्य के विचार ही उसके कर्म में परिणत होते है। विचार शक्ति के कारण ही मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने का गौरव प्राप्त है। अपनी इसी शक्ति का उपयोग करके वह संसार के जटिल से जटिल कार्य को सम्भव बना सका है। श्रेष्ठ विचार सौभाग्य का द्वार है, निकृष्ट विचार दुर्भाग्य का। विचारों के अनुरूप ही मनुष्य की स्थिति एवं गति होती है। इस प्रकार उसके विचार ही भाग्य का निर्माण करते है। उत्कृष्ट विचार मनुष्य को उत्कर्ष की राह पर ले चलते है, वही निकृष्ट विचार उसे पतन–पराभव के गर्त में समेट लेते है। सत्संकल्प का उद्घोष कर श्रीराम शर्मा आचार्य ने मानवी समुदाय के सम्मुख युग निर्माण की वैचारिक योजना रखी है। मनुष्य के लिए कहा गया है वह अपने भाग्य का निर्माता आप है। मनुष्य का विचारों के साथ अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। विचार में अपरिमित सामर्थ्य है। सत्संकल्प के विचार मनुष्य की विचार प्रक्रिया को सुगठित एवं सुव्यस्थित करके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का नवनिर्माण करते है। अच्छे व्यक्ति मिलकर ही सभ्य समाज का निर्माण करते है। व्यक्ति निर्माण का वृहद् स्वरूप ही युग निर्माण में परिलक्षित होता है। अतएव कहा जा सकता है कि सत्संकल्प में विचार क्रान्ति का जो जीवन दर्शन समाया है उसी पर व्यक्ति निर्माण, समाज निर्माण और युग निर्माण की भवितव्यता निर्भर है।

कूट शब्द : युग निर्माण सत्संकल्प, जीवन दर्शन, श्रीराम शर्मा एवं विचार क्रांति

वैज्ञानिक आविष्कारों ने सुख–संसाधनों को आविष्कृत करके व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राष्ट्र सभी पर अपना वर्चस्व स्थापित किया है। सुख–संसाधनों के भवर में फँसकर मनुष्य भाव संवेदनाओं के क्षेत्र में रीता होता जा रहा है। जिसके दुष्परिणाम अनेक प्रकार की विभीषिकाओं एवं विषमताओं के रूप में यत्र–तत्र–सर्वत्र देखने को मिल रहे हैं। आज जब संसार की 600 करोड़ की घनी आबादी में अधिकांश लोग विचार विकृति और आस्था संकट से ग्रसित है। अवांछनीयताएं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश कर रही हो, तो एक विश्व व्यापी विचार क्रान्ति की आवश्यकता है (शर्मा, 2008अ, पृ. 25)। 'विचार करने की अस्त–व्यस्त शैली को क्रमबद्ध और दिशाबद्ध करने का महान् प्रयोजन दार्शनिक शैली से ही सम्भव हो सकता है। अन्यथा उच्छृंखल गतिविधियाँ और अनगढ़ मान्यताओं का मिला–जुला रूप ऐसा विचित्र बन जाएगा, जिसे अपनाकर कोई किसी लक्ष्य तक न पहुँच सकेगा। उसे अन्धड़ में इधर–उधर उड़ते–फिरते रहने वाले तिनके की तरह कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकने में सफलता न मिलेगी। योजनाबद्ध कार्य करना जिस प्रकार आवश्यक है, उसी प्रकार योजनाबद्ध चिन्तन की भी उपयोगिता है'(शर्मा, 1972, पृ. 18)। 'युग निर्माण सत्संकल्प' विचार क्रान्ति का ऐसा मंगलकारी विधान है जिससे समस्याओं के समाधान के लिए समग्र दृष्टि की प्राप्ति होती है।

विपत्तियों एवं विषमताओं का मूलभूत कारण मानवी दृष्टिकोण में आयी गिरावट है। 'समाज में जो कुछ भी अशुभ और अवांछनीय दिखाई देता है, उसका कारण लोगों के व्यक्तिगत दोष ही है' (ब्रह्मवर्चस, 1998अ, पृ. 10.50)। दोषों की उत्पत्ति और उसका पोषण दूषित विचारों और विकृत दृष्टिकोण से होता है। युग निर्माण सत्संकल्प का अवलम्बन मानवीय विचारों का परिष्कार एवं पुनर्गठन करता है फलस्वरूप मनुष्य सद्प्रवृत्तियों की ओर अग्रसर होता है और युग के नव निर्माण हेतु सुयोग्य वातावरण निर्मित होता है।

विचार तंत्र का सशक्त यन्त्र

स्थूल, सूक्ष्म और कारण– इन तीन शरीरों के आवरण काय सत्ता के ऊपर चढ़े हुए है। स्थूल शरीर काय कलेवर रूपी क्रिया तंत्र है, सूक्ष्म शरीर मनः क्षेत्र रूपी विचार तंत्र और कारण शरीर अंतःकरण रूपी भाव तंत्र है। प्राणी समुदाय में मनुष्य की शरीर संरचना सर्वश्रेष्ठ है। उसमें चिन्तन करने के लिए उन्नत एवं सुविकसित मस्तिष्क पाया जाता है। मनुष्य मात्र में ही इन तीनों शरीर के समुचित विकास, उपयोग एवं अनावरण की सम्भावनाएं विद्यमान है। स्थूल शरीर और कारण शरीर के मध्य सूक्ष्म शरीर पाया जाता है जो दोनों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाता है। 'सूक्ष्म शरीर उन अति सूक्ष्म शक्तियों का जड़ आधार है जिन्हें हम विचार कहते हैं' (गर्ग, 2008, पृ. 107)।

मनुष्य शरीर में चिन्तन करने के लिए उन्नत एवं सुविकसित मस्तिष्क पाया जाता है। मस्तिष्क विचारों का केन्द्र है। 'जहाँ अन्य प्राणी मात्र अपने निर्वाह तक की सोच पाते हैं, वहाँ मानवी मस्तिष्क भूत–भविष्य का तारतम्य मिलाते हुए वर्तमान का श्रेष्ठतम् सदुपयोग कर सकने में समर्थ होता है' (पण्डया, 2006, पृ. 55)। 'मस्तिष्क मानवी सत्ता का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भाग है। समूचे शरीर पर उसी का शासन है' (ब्रह्मवर्चस, 1998अ, पृ. 6.

14)। जीवन की दिशा का निर्धारण मस्तिष्क में उठने वाले विचार करते है। विचारों में अपरिमित सामर्थ्य होती है। विचारों के अनुरूप ही मानवीय व्यक्तित्व गढ़ा जाता है। 'उदात्त विचारों से मन उन्नत और हृदय विशाल होता है। असद् विचार से मन उत्तेजित होता है तथा भावनाएँ दूषित और स्थूल होती हैं' (सरस्वती, 2008, पृ.54)। उत्कृष्ट एवं निकृष्ट विचार मनुष्य के क्रमशः उत्थान एवं पतन के आधारभूत कारण है। मस्तिष्कीय शक्तियों का उन्नयन एवं उत्कर्ष विचार प्रक्रिया की सही दिशा पर निर्भर है। सामान्य मनुष्य का मस्तिष्क सम्बद्ध परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुरूप गढ़ता जाता है और समाज की भली–बुरी परिस्थितियाँ उसे प्रभावित करती रहती है। स्वेच्छा से परिशोधन एवं परिमार्जन करने पर मस्तिष्कीय सामर्थ्य का विकास एवं विस्तार होता है। ऐसे मस्तिष्क में उज्जवल भविष्य के लिए विचारों की नयी–नयी कोपलें फूटती रहती है। जिन्हें निरन्तर सींचने एवं पोषित करते रहने से मनुष्य की मानसिक संरचना परिपुष्ट होती है।

विचार शक्ति

मनुष्य विचारों का पुंज है। अपने दृष्टिकोण के आधार पर वह अपने जीवन के बाह्य और आन्तरिक स्तर को निर्मित करता है (पण्डया, 2014, पृ. 40)। उत्कृष्ट विचार मनुष्य को सुखी बनाते है तो निकृष्ट विचार उसे दुःखी करते है। इस प्रकार उसकी जीवन यात्रा उत्थान–पतन की दो धाराओं में सीधी–उल्टी दिशा में गतिशील रहती है।

ऋषियों के अनुसार इस जगत में जो कुछ भी विद्यमान है वह सब परमात्मा के विचारों का स्फुरण है। यहाँ का प्रत्येक दृश्य विचारों का मूर्त रूप है। मनुष्य की प्रत्येक क्रिया के पीछे उसके विचारों की शक्ति अदृश्य रूप से विद्यमान होती है। उसका प्रत्येक कार्य उसके विचारों की ही परिणति है। क्रिया और विचार का कार्य–कारण का सम्बन्ध है। दृष्टान्त रूप में, जब एक भौतिक विज्ञानवादी एक विशाल भवन का निर्माण करता है तो भवन निर्माण का विज्ञान या नक्शा उसके मस्तिष्क में पहले से विद्यमान रहता है। वह कारीगरों को शब्दों में निर्देश देता है। तद्नुसार वे भवन निर्माण में लग जाते है। इस प्रकार निर्मित भवन भौतिक विज्ञानवादी के विज्ञान का ही मूर्त रूप है (योगोश्वरानन्द, 2002, पृ. 95)। तात्पर्य यह है मनुष्य के प्रत्येक कार्य विचारों की प्रेरणा से क्रियान्वित होते है। विचार शक्ति ही उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व का निर्धारण करती है।

विचार ऐसे जीवित पदार्थ है, जिसका सम्बन्ध पदार्थ से न होकर मनुष्य की चेतना से है। मनुष्य का शरीर समाप्त हो सकता है पर उसके विचार कभी नहीं मिटते (सरस्वती, 2008, पृ. 20)। प्रकाश एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेण्ड की गति से चलता है, जबकि विचार की गति प्रकाश की गति से भी अधिक तेज है। आइन्स्टीन के सापेक्षवाद के सिद्धान्त के अनुसार, किसी वस्तु के प्रकाश की गति से भी तेज चलने पर समय पीछे रह जाता है और क्रिया आगे बढ़ जाती है। अर्थात् वह ऋण समय में पूरी हो जाती है (ब्रह्मवर्चस, 1998ब, पृ. 6.1)। वेग के बढ़ने के साथ भार में कमी आती है 'प्रकाश स्वयं शक्ति है, उसका कोई भार नहीं, इसलिए जो वस्तु प्रकाश की गति से भी तीव्र चलेगी, उसका भी भार शून्य हो जायेगा'(ब्रह्मवर्चस, 1998ब, पृ. 6.1)। अतएव विचार शक्ति के मूल्य एवं महत्व को सर्वव्यापी एवं सर्वशक्तिमान् सत्ता के रूप में स्वीकारा गया है, जो अन्य भौतिक शक्तियों की तुलना में करोड़ गुना अधिक प्रभावी है।

वैचारिक विकृति व उससे उत्पन्न समस्यायें

समाज में विद्यमान वैषम्यता और विसंगतियों का कारण परिस्थिति नहीं मनःस्थिति है। प्राचीन काल में मनुष्य अपने जीवन को उच्च स्तरीय प्रयोजनों में लगाता था और स्वल्प साधनों में भी गुजारा करके सन्तुष्ट रहता था। जबकि आज 'सुख–साधनों से भरा विश्व– बुद्धि और शक्ति का धनी मनुष्य–इन दोनों का समन्वय तो स्वर्ग ही सृजन कर सकता है फिर यह नारकीय वातावरण कैसे बन गया ? इस आश्चर्य पर गम्भीरता से विचार करने पर यह निष्कर्ष सामने आता है कि मनुष्य ने अपनी आकांक्षा, विचारणा, दिशा और आस्था को उत्कृष्टता से विरत कर निकृष्टता से जोड़ दिया। इस एक भूल ने सब कुछ उल्टा कर दिया' (शर्मा, 1970, पृ. 16)। मस्तिष्क में उत्पन्न जिन विचारों ने सुविधा–साधनों के निर्माण की स्वतन्त्र योजनाएं बनाई और उन्हें मूर्त रूप दिया किन्तु संसाधनों के अनियन्त्रित उपयोग ने मनुष्य को उसका दास बना दिया। कोई भी घटनाक्रम पहले विचार जगत को प्रभावित करता है तत्पश्चात् प्रत्यक्ष जगत में मूर्त होता है। मनुष्य आज आस्था संकट के दुर्दिनों से गुजर रहा है। आचार्य श्रीराम शर्मा के शब्दों में, 'अपने युग की अनेकानेक समस्याओं, विपत्तियों और विभीषिकाओं का एकमात्र कारण मानवी अन्तःकरण से सन्निहित रहने वाली उच्चस्तरीय आस्थाओं का अवमूल्यन है' (ब्रह्मवर्चस, 1998स, पृ. 4.23), जिसने मनुष्य के विचार को कलुषित कर उसे वैचारिक रूप से दरिद्र बनाया है।

वस्तुस्थिति यह है कि 'बढ़ता प्रदूषण, युद्धोन्माद विकिरण, अपराधों की अभिवृद्धि, जनसंख्या विस्फोट, पर्यावरण आदि अनेकों संकटों से संसार को बुरी तरह जूझना पड़ रहा है। जन–साधारण भी दुर्बलता, रूग्णता, अशिक्षा, दरिद्रता आदि के कुचक्र में पिस रहा है। समस्यायें, उलझनें, विपत्तियाँ, अपने–अपने ढ़ंग से हर किसी को हैरान कर रही है' (ब्रह्मवर्चस, 2015, पृ. 46)। सामान्य तौर पर इन समस्याओं के अनेक कारण और उनके भिन्न–भिन्न समाधान खोजे जा रहे है, पर गहराई में उतरने पर ज्ञात होता है कि वर्तमान उपलब्धियों के दुरूपयोग में दुर्बुद्धि ही वह नितान्त निर्विवाद कारण है जिसने सम–सामायिक समस्याओं

को जन्म दिया है (ब्रह्मवर्चस, 2015, पृ. 47)। भारत की समस्या के सन्दर्भ में श्रीअरविन्द का कहना है कि 'भारत की कमजोरी का प्रमुख कारण उसकी दासता, गरीबी और धर्म नहीं है, बल्कि वह है विचार शक्ति का ह्रास और ज्ञान की मातृभूमि में अज्ञान का विस्तार' (पण्डया, 2010, पृ. 26)। स्पष्ट है कि आज व्यष्टि और समष्टि में जो समस्यायें व्याप्त है उन सबका प्रधान हेतु विचारों में व्याप्त प्रदूषण है। वैचारिक प्रदूषण से संतप्त वातावरण में युग निर्माण सत्संकल्प में मनुष्य के जीवन की नयी राहें विद्यमान है।

विचार क्रान्ति के अभिनव सूत्र– युग निर्माण सत्संकल्प

जब मानवीय चेतना में दुर्गुणों की भारी वृद्धि को व्यक्ति और समाज में व्याप्त अशान्ति और अव्यवस्था का कारण बताया जा रहा हो, ऐसे में विचारों की चेतन शक्ति ही मानवीय चेतना के परिष्कार का यथेष्ट माध्यम हो सकती है। समय की मांग को देखते हुए चेतना के परिष्कार और युग के नव निर्माण हेतु आचार्य श्रीराम शर्मा ने सतत् विचार मन्थन किया। उससे निष्पन्न सार को युग निर्माण सत्संकल्प का स्वरूप दिया, जिसे सितम्बर 1962 की अखण्ड ज्योति में सर्वप्रथम ने लिखा और प्रतिदिन प्रातःकाल एवं शुभ अवसरों पर सामूहिक रूप से उसे पढ़े जाने के लिए आवाहन किया (शर्मा, 1962, पृ. 2)। सत्संकल्प का प्रत्येक विचार मनःसंस्थान को उदात्त एवं उर्वर बनाने में समर्थ हैं, मन में प्रसुप्त अनन्त सामर्थ्य को जीवन्त–जागृत एवं विकसित–प्रफुल्लित करता है। युग निर्माण सत्संकल्प (शर्मा, 2002, पृ. 71–72) का प्रारूप निम्नांकित है–

हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे। शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्म–संयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे। मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाये रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे। इन्द्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का सतत् अभ्यास करेंगे। अपने आपको समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे। मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और समाज निष्ठ बने रहेंगे। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे। चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे। अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे। मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे। दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसन्द नहीं। हम नर–नारी के प्रति पवित्र दृष्टि रखेंगे। संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे। परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्व देंगे। सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रूचि लेंगे। राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान् रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, सम्प्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है, इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनायेंगे, तो युग अवश्य बदलेगा। ''हम बदलेंगे–युग बदलेगा। हम सुधरेंगे–युग सुधरेगा'' इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।

युग निर्माण सत्संकल्प में निहित प्रत्येक वाक्य की महत्ता सर्वकालिक है। किन्तु जब वैचारिक विकृति ने सूक्ष्म वातावरण को विकृत कर दिया हो तो ऐसे समय में इसकी उपादेयता अति विशिष्ट हो जाती है।

युग निर्माण सत्संकल्प से समसामायिक समस्याओं का निराकरण

समस्या है तो उसका समाधान भी अवश्य होगा। कारण को जान लेने पर निवारण भी सूझ पड़ता है। आचार्य श्रीराम शर्मा ने आज के विग्रहों का उत्पादन केन्द्र बुद्धि–विभ्रम एवं आस्था संकट को माना है। मनुष्य का चिन्तन ही कर्म में परिणत होकर भली–बुरी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है (ब्रह्मवर्चस, 2015, पृ. 47)। अतएव विचार और मनुष्य के कर्म में जो पारस्परिक सम्बन्ध है, उसे समझ कर ही वर्तमान समस्याओं को भली–भाँति सुलझाया जा सकता है और सुख–शान्ति की स्थापना हो सकती है।

विचार मस्तिष्क में पनपते है, वही मनुष्य के कार्य की प्रेरक शक्ति है। गीता कहती है मनुष्य श्रद्धामय है, इसलिए जैसी जिसकी श्रद्धा होती है, वह स्वयं भी वैसा ही होता है (गीता, 17/3)। श्रद्धा के अनुरूप मनुष्य में संकल्प उभरते है। उपनिषद में मानव मन के श्रेष्ठ–कल्याणकारी संकल्पों से युक्त होने का विचार बार–बार ध्वनित हुआ है (शिवसंकल्पोपनिषद–1)। जब बुद्धि–विपर्यय के कारण समाज में विध्वंसात्मक प्रवृत्ति इतनी बढ़ गयी हो और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वीभत्सता भयंकर रूप से व्याप्त है, तब मनुष्य को सुपथगामी बनाने के लिए विचार क्रान्ति आवश्यक हो जाती है।

'युग निर्माण सत्संकल्प' का गहन विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इसमें निहित 18 सत्संकल्प मनुष्य की बुद्धि –विपर्यय को दूर करके अपने समय की समस्याओं का समाधान करने में समर्थ हैं।

सत्संकल्प (1)– हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।

ईश्वर को मानना आस्तिकता है। 'मानने का अर्थ है, उसका अनुयायी होना और अनुयायी होने का तात्पर्य है, उसके विचार, निर्देश एवं आदर्श के अनुसार चलना' (शर्मा, 1966, पृ. 4)। जड़

और चेतन के समन्वय से सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है। ईशावास्योवनिषद में इस सृष्टि में विद्यमान समस्त जड़ एवं चेतन को ईश द्वारा आवृत–आच्छादित बताया गया है (ईशावास्य उपनिषद–1)। ऐसा कहकर उपनिषद ने ईश्वर की सर्वव्यापकता अर्थात् वह सर्वत्र विद्यमान है (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड 3, पृ. 54) का प्रमाण प्रस्तुत किया है। समस्त चराचर जगत पर ईश्वर का अधिकार है। वह न्यायनिष्ठ है, उसी की विधि–व्यवस्था से सृष्टि की समस्त गतिविधियाँ संचालित हो रही है तथा कर्मफल ईश्वरीय विधान का अविच्छिन्न अंग है (शर्मा, 2009, पृ. 8)।

समस्याओं से संतप्त मनुष्य सुख और शांति का जीवन जीना चाहता है। इसके लिए वह कस्तूरी मृग की भाँति नानाविध प्रयत्न करके भी सच्ची सफलता से कोसो दूर है। आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार, 'विश्व में स्थायी शान्ति की स्थापना जिन आधारों पर सम्भव है उनमें आस्तिकता सर्वप्रधान है। ईश्वर के अस्तित्व पर, उनकी सर्वव्यापकता और न्यायशीलता पर विश्वास हुए बिना मनुष्य के लिए यह कठिन है, कि वह प्रलोभनों के समय, आपत्तियों के समय भी अपने कर्तव्य धर्म से विचलित न हो' (ब्रह्मवर्चस, 1998न, पृ. 1.21)। अभिप्राय यह है कि ईश्वर की सर्वव्यापकता और न्यायप्रियता पर विश्वास करने वाला आस्तिक कभी भी पदभ्रष्ट न होगा। वह जहाँ कहीं भी या जिस किसी भी परिस्थिति में होगा, लोक–मंगल और विश्व–कल्याण की भावना से कार्य करेगा। क्योंकि वह जानता है कि ऐसा करके वस्तुतः वह सृष्टि के कण–कण में रचे बसे ईश्वर की ही सच्ची सेवा कर रहा है।

सत्संकल्प (2)– शरीर को भगवान् का मंदिर समझकर आत्म–संयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।
सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वर की कलाकृति है। सृष्टि के अन्य प्राणियों का निर्माण करके वह संतुष्ट नही हुआ। मनुष्य की रचना करके वह अत्यन्त हर्षित हुआ। क्योंकि मनुष्य शरीर में ब्रह्म को प्राप्त करने की अदभुत समर्थ है (श्रीमद्भागवत्– 11/9/28)। विनोबा भावे मनुष्य शरीर को ईश्वर प्रदत्त ट्रस्ट की संज्ञा देते है। जिसका उद्देश्य आत्म साक्षात्कार करना है (विनोबा साहित्य, 1999, पृ. 5)। स्वस्थ्य शरीर के माध्यम से ही आत्म साक्षात्कार का वृहद लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। अस्वस्थ मनुष्य अपने निर्वाह लायक उत्पादन करने में भी असमर्थ होता है। अस्वस्थता उसे परावलम्बी बना देती है। ऐसी अवस्था में न वह किसी की सहायता कर सकता है न आत्म साक्षात्कार के वृहद लक्ष्य को ही पा सकता है।

ऐसे महत्तर उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आरोग्य अनिवार्य हो जाता है। आयुर्वेद में कहा गया है कि, 'जिस प्रकार नगरपति नगर के कार्यों में एवं रक्षी रथ की रक्षा में सावधान रहता है, उसी प्रकार प्रत्येक मेधावी पुरूष को अपने शरीर की रक्षा में सावधान रहना चाहिए (चरक सूत्र, 5/109)। आत्म संयम एवं नियमितता ही वह सशक्त आधार है जिस पर शारीरिक आरोग्य निर्भर है। इनकी अपेक्षा औषधियों का महत्व गौण है। औषधियों से क्षणिक आराम मिल सकता है, किन्तु शारीरिक अंग अवयवों की गतिशीलता के लिए जिस जीवनी शक्ति की आवश्यकता होती है उसे बनाये रखना आत्मसंयम एवं नियमितता के आधार पर ही सम्भव होता है। आत्मसंयमी विषम परिस्थितियों में भी समदर्शी बना रहता है। नियमित जीवनचर्या को अपना लेने पर जीवन में विश्रृखलताओं का प्रवेश नहीं हो पाया है। इस प्रकार आत्म संयम और नियमितता द्वारा जीवन शक्ति का संवर्धन होता है और शारीरिक स्वास्थ्य अक्षुण बना रहता है। ईश्वर ने अपनी समग्र कुशलता का समावेश करके बड़ी आशा और भावना के साथ मनुष्य शरीर का निर्माण करके उसके संचालन का उत्तरदायित्व मनुष्य को सौंपा है (ब्रह्मवर्चस, 1998न, पृ. 2.10)। मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि इसके सुसंचालन द्वारा स्वयं लाभान्वित हो और सृष्टि की सुव्यवस्था में सहायता पहुँचाये।

सत्संकल्प (3)– मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाये रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।
मन व विचार के शुद्ध, परिष्कृत हुए बिना स्वस्थ शरीर व शालीन व्यवहार की कल्पना नहीं की जा सकती। स्वाध्याय के द्वारा व्यक्ति अच्छे विचारों को धारण करता है तथा इसके धारण करने के बाद ही कुविचार दूर होते है (शर्मा, 2006, पृ. 1)। पाप के बीज विचारों में रहते है (ब्रह्मवर्चस, 1998न, पृ. 5.10)। कुविचारों के मन में उठते ही मस्तिष्क उसके अनुरूप योजनायें बनाने लगता है (ब्रह्मवर्चस, 1998न, पृ. 1.21) जिनमें से कुछ योजनाऐं अपने छोटे–बड़े रूप में कर्मों में परिणत होती दिखाई देती है।

कुविचार एवं दुर्भावना ग्रसित मन अपनी विशिष्टता एवं श्रेष्ठता खो बैठता है। विश्वव्यापी समस्याओं की गहराई में जाने पर पता चलता है कि कुविचार एवं दुर्भावनाएं ही वर्तमान समस्याओं का वास्तविक कारण है। मन को सन्मार्ग पर ले चलकर ही विश्वव्यापी समस्याओं का समाधान खोजा जा सकता है। स्वाध्याय एवं सत्संग मन को कुविचारों एवं दुर्भावनाओं से बचाने का उत्कृष्ट माध्यम है, इनके द्वारा मन को सही दिशा मिलती है और उसकी शक्तियों का विकास होता है। स्वाध्याय को मन एवं विचारों का स्नान बताया गया है। जिसके द्वारा वैचारिक जड़ता मिटती है (पण्डया, 2010, पृ. 27)। संत्सग की महिमा का गुणगान करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते है कि सत्संग से मनुष्य को सत्य एवं सदाचार का लाभ मिलता है (राम चरित मानस, बालकाण्ड– 2/4)। समस्यायें सदा अज्ञान के गर्भ से जन्म लेती है स्वाध्याय एवं सत्संग से निर्मल हुआ मन ज्ञान प्राप्ति का उत्कृष्ट साधन बन जाता है।

सत्संकल्प (4)– इन्द्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का सतत अभ्यास करेंगे।

संयम जीवन समर में आगे बढ़ने के लिए सतत् प्रतिपक्षी विचारों भावनाओं, क्रियाकलापों एवं परिस्थितियों से जूझने की प्रक्रिया है। इन्द्रिय शक्ति, समय शक्ति, विचार शक्ति, और साधन शक्ति– ये जीवन सम्पदा के चार क्षेत्र है। इनमें प्रथम तीन ईश्वर प्रदत्त है। चौथी को इन तीनों के संयुक्त प्रयत्न द्वारा मनुष्य भौतिक क्षेत्र में पुरूषार्थ द्वारा प्राप्त कर लेता है (ब्रह्मवर्चस, 1998स, पृ. 1.33–1.34)। श्रीमद्भागवत पुराण में इन्द्रियों के असंयम को बंधनकारी और संयम को मोक्षदायी बताया गया है (श्रीमद्भागवत् पुराण, 11/18/22)। श्रम के द्वारा समय का सदुपयोग एवं सुनियोजन किया जाता है। श्रम के अभाव में मनुष्य आलसी एवं प्रमादी होकर जीवन को अर्थहीन बना लेता है। समय की सम्पदा का श्रम में नियोजन करके मनुष्य समृद्धिवान एवं विभूतिवान बनता है। विचार को सजीव कहा गया है। मानव जीवन उसके विचारों की फलश्रुति है। मनुष्य वहीं है जो उसके विचारों ने उसे बनाया है (विवेकानंद साहित्य, भाग–7, पृ. 14)। श्रम और मनोयोग से धन की प्राप्ति होती है। धन के अपव्यय को रोककर उसे परमार्थ प्रयोजनों में लगाना चाहिए। सत्प्रयोजन में धन का व्यय करने पर सत्प्रवृतियाँ पनपती है। मनुष्य के क्रियाकलापों का श्रेष्ठता के साथ समन्वय होने पर उसके श्रम, समय, मनोयोग एवं साधनों का सत्प्रयोजनों में उपयोग होता है। परिणाम स्वरूप अनुकूल एवं सुखद परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है।

सत्संकल्प (5)– अपने आपको समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।

मनुष्य मात्र व्यष्टि नहीं समष्टि का अभिन्न घटक है। जिस प्रकार शरीर के सभी अंग पारस्परिक रूप से एक–दूसरे से सम्बन्धित है, किसी एक अंग की भी विकृति अत्याल्प रूप में समस्त शरीर को प्रभावित करती है। उसी प्रकार से किसी व्यक्ति की बुराई का प्रभाव समाज पर पड़ता है। समाज में जिस अनुपात में बुरे व्यक्तियों की वृद्धि होती है उसी अनुपात में दुःख एवं कष्ट भी बढ़ते है। समाज का हित साधन परमार्थ प्रयोजन के माध्यम से बन पड़ता है।

प्रस्तुत संकल्प मनुष्य को स्वार्थ के लिए नहीं, अपितु परमार्थ प्रयोजनों के लिए जीने की प्रेरणा देता है। समाज के नव निर्माण का दायित्व परमार्थ प्रयोजनों के माध्यम से सम्भव बनता है। समाज के विषय में कहा गया है कि 'एकता के आदर्शों में बटे हुए और उस आदर्श के लिए सब कुछ निछावर कर देने की भावना वाले व्यक्तियों का समूह ही समाज या राष्ट्र है' (ब्रह्मवर्चस, 1998व, पृ. 5.7)। अतएव मनुष्य के लिए 'मात्र अपने आपको अच्छा रखना ही पर्याप्त नहीं। अपनापन भी विस्तृत होना चाहिए' (ब्रह्मवर्चस, 1998न, पृ. 1.68–1.69) अपनत्व के विस्तार के साथ मनुष्य का संकुचित स्वार्थ विकसित होकर परमार्थ का रूप धारण कर लेता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि 'सबके हित में अपना हित मानने वाला वही सोचता और वही करता है, जिसमें समग्र स्वार्थ साधन बन पड़ता हो ऐसी स्थिति विश्वहित या विश्वसेवा ही हो सकती है'(शर्मा, 1988, पृ. 5–6)।

सत्संकल्प (6)– मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और समाज निष्ठ बने रहेंगे।

अलग–अलग होते हुए भी प्रत्येक मनुष्य एक ही समाज के अंग है। सामाजिक सुव्यवस्था को बनाये रखने के लिए समाज के कुछ अपने नीति–नियम होते है। इसके अन्तर्गत मर्यादाओं के पालन और वर्जनाओं से बचने की बात कही जाती है। यथा–सभी प्राणियों से भ्रातृवत व्यवहार करना, वृद्धजन–वय एवं कुल में श्रेष्ठ लोगों का सम्मान करना, कलह में रूचि न लेना और नशा न करना आदि समाज द्वारा मानव मात्र के लिए कुछ करणीय एवं अकरणीय कर्त्तव्य है (राय, 2010, पृ. 46)। सामाजिक प्राणी होने के साथ–साथ प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी देश का नागरिक है। स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिकों को जहाँ कई तरह के अधिकार प्राप्त होते है, वहीं स्वेच्छा से पालन किये जाने वाले कुछ उत्तरदायित्वों का भार भी वहन करना पड़ता है। नागरिक कर्त्तव्यों का भलीभाँति पालन करने पर ही स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिकों का पात्रत्व सिद्ध हो पाता है (ब्रह्मवर्चस, 1998र, पृ. 4.60)। अधिकारों के उपयोग और कर्त्तव्यों के पालन की प्रक्रिया के साथ–साथ चलने पर राष्ट्र प्रगति करता है और उसकी स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रहती है।

सत्संकल्प (7)– समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।

विपत्तियाँ आकाश से नहीं टपकती। मनुष्य अपनी दुर्बुद्धि द्वारा उसे स्वयं विनिर्मित करता है। मनुष्य यदि ध्वंस रच सकता है तो सृजन की योग्यता भी विकसित कर सकता है। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादूरी– ये चार ऐसी मानसिक विशेषताएं है जिनके आधार पर वह समस्याओं को निरस्त कर सकता है और बड़े से बड़ा सृजनात्मक कार्य कर सकता है। दूरदर्शी विवेकशीलता को अपनाना समझदारी है (शर्मा 2009, पृ. 41)। इसके द्वारा असंयम की वृत्ति को रोककर जीवन सम्पदा को अस्त–व्यस्त होने से बचाया जा सकता है। ईमानदार व्यक्ति प्रमाणिक और विश्वासी होता है, उसे जन–जन का सहयोग और सम्मान मिलता है। जिम्मेदार व्यक्ति ही बड़े–बड़े पराक्रम करते देखे जाते है। जिम्मेदार व्यक्ति ही महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए प्रगति के उच्च शिखर पर पहुँच जाते है। निर्भीक पुरूषार्थ–परायणता बहादूरी कहलाती है। इसके अन्तर्गत जोखिम उठाते हुए भी उस मार्ग पर चलते जाना होता है, जो नीति–निष्ठा

से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। बुराइयाँ संघर्ष किये बिना नष्ट नहीं होती है। संघर्ष के लिए बहादुरी अपनाना अनिवार्य हो जाता है (ब्रह्मवर्चस, 1998अ, पृ. 3.8)। अतएव, कहा जा सकता है कि समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, और बहादुरी इन चार मानसिक योग्यताओं को जीवन का अविच्छिन्न अंग बना लेने वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व कुन्दन की भाँति चमकदार हो जाता है। प्रतिकूलताओं के मध्य भी वह हँसता–मुस्कुराता हुआ संघर्षरत् रहता है।

सत्संकल्प (8)– चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।

मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता के आधार पर ही स्वस्थ वातावरण विनिर्मित होता है। स्वस्थ वातावरण में सभी की प्रगति के पर्याप्त अवसर होते है। विचार मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण करते है विचारों को उत्कृष्ट रखते हुए उन्हें मधुर शब्दों में व्यक्त करना चाहिए। मधुर एवं प्रिय शब्दों को दैवी सम्पदा कहा गया है (ब्रह्मवर्चस, 1998ब, पृ. 1.14)। मधुरता से मित्रता का विस्तार होता है और शत्रु भी मित्र बन जाते है। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बताये गये है, शौच अर्थात् स्वच्छता भी उन्हीं में से एक है (मनुस्मृति, 6/92)। स्वच्छता बाह्य एवं आन्तरिक– दो प्रकार की होती है। बाहरी स्वच्छता मनुष्य को रोगमुक्त रखती है। आन्तरिक स्वच्छता मानसिक संकीर्णता को मिटाकर आत्म विकास का पथ प्रशस्त करती है। मनुष्य की गरिमा जीवन को सादगी पूर्ण व्यतीत करने में है अन्यथा उसका बहुत सा समय और श्रम शरीर की ही देख रेख में बीत जाता है। जीवन को गौरवान्वित करने के लिए उसे विचारों को श्रेष्ठ रखते हुए सादगी पूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिए। सज्जन सदा जनहित की सोचते और करते है। मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता मानव व्यक्तित्व में निहित ये दिव्य सम्पदाएं सौहार्द पूर्ण वातावरण का निर्माण करके मानव मात्र की प्रगति का द्वार खोलती है।

सत्संकल्प (9)– अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।

सुख, समृद्धि एवं वैभव के अर्जन की लालसा मनुष्य में सहज विद्यमान होती है। जब वह अति की सीमा को पार कर जाती है तो मनुष्य उसे येन–केन–प्रकारेण प्राप्त करने की कोशिश करता है। ऐसे में मनुष्य यदि सफल हो जाये तो उसके दूरगामी दुष्परिणाम अत्यन्त भयावह होते है। क्योंकि 'आतंक व अनीति की कीमत पर प्राप्त की गई वस्तु जिस किसी के पास जाती है, उसे सुख नहीं, कष्ट ही देती है' (शर्मा, 1988, पृ. 52)। इस प्रकार अनीति से प्राप्त होने वाली सफलता निरर्थक, निस्सार एवं त्रास देने वाली ही सिद्ध होती है।

मानव जीवन की गरिमा और महिमा नीति के मार्ग का अनुगमन करने में है। महाभारत का युद्ध पाण्डव सेना द्वारा अनीति के विरूद्ध लड़ा गया। इसमें नीति के पक्ष का समर्थन करते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है– युद्ध में मारे जाने पर या तो तुझे स्वर्ग की प्राप्ति होगी अथवा संग्राम में जीते जाने पर पृथ्वी का राज्य मिलेगा (गीता, 2/37)। अभिप्राय यह है कि नीति के मार्ग पर मिलने वाली सफलता तो श्रेयष्कर होती ही है, किन्तु नीतिगत मार्ग से मिली असफलता भी अत्यधिक फलदायी होती है, अतएव मनुष्य को सदा नीतिगत पथ का अनुगमन करना चाहिए।

सत्संकल्प (10)– मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।

मनुष्य सर्वसमर्थ ईश्वर का अंश है, इसलिए उसमें योग्यताओं एवं विभूतियों का होना स्वाभाविक है। योग्यताएं एवं विभूतियाँ मूल्यवान तब बनती है जब इनका सत्प्रयोजनों के निमित्त उपयोग हो पाता है, अन्यथा ये उपयोगी न होकर अनर्थ का कारण ही बनती है। सत्प्रयोजन में प्रवृत्ति होने के लिए अन्तःकरण का पवित्र होना अनिवार्य है। पवित्र अन्तःकरण में सद्विचार उमड़ते है और सत्कर्म में परिणत होते है। साधु, सज्जन, सद्गुणी, सेवा–भावी लोग न केवल नगण्य साधनों में भी सदाशयता की रीति–नीति अपनाये हुए हँसता–हँसाता और खिलता–खिलाता जीते है वरन् अन्य पिछड़े हुओं को भी ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने में समर्थ होते है (ब्रह्मवर्चस, 1998ब, पृ. 10.28)। तात्पर्य यह है कि आंतरिक गुण से सम्पन्न व्यक्ति ही साधन–सम्पदा एवं समृद्धि का सच्चा उपयोग कर पाते है। इसलिए नाम, पद, प्रतिष्ठा को मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी न मानकर सद्विचारों एवं सत्कर्म को मानना ही श्रेयष्कर है।

सत्संकल्प (11)– दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसन्द नहीं।

जीवन में सुख एवं दुःख धूप और छाव की तरह से आते–जाते रहते है। सामान्यतया मनुष्य सुखों की ओर प्रवृत्त होता है और दुःखों से निवृत्ति चाहता है। इसके लिए मनुष्य को दोहरी बाट रखते देखा जाता है, वह दूसरों से अपने लिए अच्छे व्यवहार की आशा रखता है; परन्तु अवसर मिलते ही दूसरों के साथ प्रतिकूल व्यवहार कर बैठता है। इस प्रकार दोहरे मानदण्ड को अपनाने वाला सच्ची सफलता से सदा वंचित ही रहता है। सच्चे धर्म का यही सन्देश है कि जैसे व्यवहार की अपेक्षा मनुष्य दूसरों से रखता है वैसा व्यवहार दूसरों के साथ पहले स्वयं करना चाहिए। महाभारत में कहा गया है कि जो व्यवहार अपने मन के प्रतिकूल हो उसे दूसरों के प्रति न करे (महाभारत, 5/15/17)। उदार चरिता मनुष्य ने ऐसा ही आचरण करके आत्म विस्तार किया और

समाज में सहकारिता की प्रवृत्ति का सम्वर्द्धन एवं सौहार्द की स्थापना की।

अपने समान सबके दुःख–सुख को समझना मानव मात्र का कर्त्तव्य है। मनुष्य को दूसरों के सुख में सुखी और दूसरों के दुःख में दुःखी होना चाहिए। अपना सुख बाँटने और दूसरों के दुःख बँटाने की आंकाक्षा, मनुष्य को वसुधैव कुटुम्बकम् के उच्च आत्मस्तर तक पहुँचा सकती है (शर्मा, 2004, पृ. 223)। नारद पुराण में इसकी महत्त को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि अन्य के दुःख से जो दुःखी है, अन्य के हर्ष से जो हर्षित है, वह जगत का ईश नर रूपधारी भगवान हैं (नारद पुराण, पूर्वखण्ड–7/69)। तात्पर्य यह है कि यह विश्व ईश्वर की ही साकार अभिव्यंजना है। इसमें रहने वाला मनुष्य जब दूसरों के साथ वैसा व्यवहार करता है, जैसा वह दूसरों से अपेक्षा रखता है, तो स्वयं के हित के साथ परहित भी करता चलता है। इस प्रकार संसार की सेवा करता हुआ, वह वस्तुतः ईश सेवा करता है और आत्मविस्तार करके ईश रूप हो जाता है।

सत्संकल्प (12)– नर–नारी परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।

'मनुष्य समाज के दो विभाग हैं– एक नर, दूसरा नारी' (ब्रह्मवर्चस, 1998ल, पृ. 4.17)। दोनों का अपने–अपने स्थान पर अपने–अपने प्रकार का महत्त्व है इनमें से न किसी को बड़ा माना जा सकता है, न छोटा (ब्रह्मवर्चस, 1998ल, पृ. 3.24)। 'विश्व की आधी जनशक्ति नारी है' (ब्रह्मवर्चस, 1998द, पृ. 2.37)। परिवार, समाज एवं राष्ट्र के विकास का दायित्व नर–नारी दोनों के कंधों पर है। शास्त्रों में परस्त्री के प्रति मातृत्व भाव रखने की बात कही गयी है। नारी के प्रति पवित्रता का भाव जाग्रत हो जाने पर उस पर होने वाले शोषण एवं अत्याचार स्वतः बन्द हो जायेंगे। अपवित्रता के विचार से मनुष्य पवित्र नहीं बन सकता (यतीश्वरानन्द, 2005, पृ. 155)। 'सृष्टि में नर और नारी दोनों ही समान महत्त्व रखते हैं (ब्रह्मवर्चस, 1998ल, पृ. 4.68)। नर भी नारी की भाँति समाज का अभिन्न घटक है। परिवार, समाज एवं राष्ट्र के प्रति उसके भी अपने दायित्व होते है। उसके प्रति पवित्र दृष्टि रखने पर वह निर्बाध रूप से कर्त्तव्य का पालन कर सकेगा। नर–नारी की परस्पर पवित्र दृष्टि पूरी वसुधा को एक कुटुम्ब का स्वरूप प्रदान कर सकती है।

सत्संकल्प (13)– संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरूषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।

मानव जीवन सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन के लिए मिला है। मनुष्य वैभवशाली है क्योंकि उसके पास समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरूषार्थ और धन रूपी पाँच विभूतियाँ है। अपनी इन विभूतियों को जीवन के सार्थक एवं निरर्थक प्रयोजनों में लगाने की उसे पूर्ण सुविधा मिली है। मानव जीवन की गरिमा इन पंच विभूतियों को सत्प्रवृत्ति संवर्धन के पुण्य प्रयोजन में लगाने में है।

इन दिव्य–विभूतियों को व्यक्तिगत जीवन की आवश्यकता को पूरा करने में ही खत्म नहीं कर देना चाहिए, वरन् इसका कुछ अशं सत्प्रवृत्ति–संवर्धन हेतु दूसरों के सेवार्थ सुरक्षित रखना चाहिए (शर्मा, 2009, पृ. 74)। सत्प्रवृत्ति संवर्धन के अन्तर्गत शिक्षा संवर्धन, स्वावलम्बन, नारी जागरण, वृक्षारोपण जैसे सृजनात्मक प्रयोजन आते है। इन सृजनात्मक कार्यों के लिए बहुत से समय एवं धन की आवश्यकता होती है। 'समयदान को सर्वोत्कृष्ट दान माना गया है क्योंकि इसमें ईश्वर प्रदत्त समय एवं शरीरगत पुरूषार्थ का, प्रत्यक्ष रूप में श्रम और अंतःकरण की भाव संवेदना का गहरा पुट रहने पर ही यह प्रक्रिया सशक्त रूप में पड़ती है' (शर्मा, 2008ब, पृ. 32) ध्वंस की अपेक्षा सृजन महँगा है। सर्वतोन्मुखी नव–निर्माण के लिए आवश्यक धन यदि सहजता से न प्राप्त हो सके, तब जाग्रत आत्माओं को ही अपनी रोटी पर कैंची चलाकर प्राप्त बचत की श्रद्धांजलि को युग चेतना की झोली में देना होगा (ब्रह्मवर्चस, 1998अ, पृ. 6.28)। समयदान और अंशदान की पुण्य परम्परा के निर्वाह में दैनिक जीवन में सम्पन्न किए जाने वाले आवश्यक कार्यों सी नियमितता अपनानी होगी। समयदान और अंशदान की इस पुण्य परम्परा को अपना लेने पर संसार में सत्प्रवृत्तियों के प्रसार का महत् प्रयोजन सहज ही पूर्ण हो सकेगा।

सत्संकल्प (14)– परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्व देंगे।

सभ्य समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपना व्यक्तित्व गढ़ने और प्रगति पथ पर बढ़ने के लिए समान अवसर उपलब्ध होता है। अंध परंपराएँ, मूढ़ताएँ, अनैतिकताएँ, संकीर्णताएँ, अनेक प्रथाऐं, अनेक प्रचलन, चिन्तन की कई दिशाधारायें मनुष्य की चिन्तन–चेतना को निखारती कम है, भ्रम–जंजालों में अधिक भटकाती है (ब्रह्मवर्चस, 1998र, पृ. 1.9)। उचित–अनुचित का निर्णय करने के लिए भगवान ने मनुष्य को बुद्धि दी है। बुद्धि से एक सीढ़ी ऊँची मनःस्थिति विवेक कहलाती है (शर्मा, 1988, पृ. 5)। यह 'वह मनःस्थिति है जिसमें न्याय औचित्य युक्त उदारता ही शेष रह जाती है। यही वह कसौटी रहती है जिसके ऊपर कसकर जीवन को खरा–खोटा, उत्कृष्ट–निकृष्ट ठहराया जाता है' (शर्मा, 1888, पृ. 6)।

अनाज साफ करते समय जिस प्रकार कचरा–कंकड़ निकाल फेके जाते है, उसी प्रकार अंध परम्पराओं के संकीर्ण दायरे को हटाना–मिटाना होता है। आज एक ऐसे समाज की रचना जिसमें सभी के हितों की रक्षा हो और सभी के लिये विकास के समान अवसर उपलब्ध हो स्वप्नवत् लगती है, किन्तु परम्पराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देने पर वह मूर्तिमान हो सकती है।

सत्संकल्प (15)– सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रूचि लेंगे।

सद्गुणों के संवर्धन और समाज में सुव्यवस्था की स्थापना की गतिविधियों में सज्जनों को सदा सक्रिय देखा जाता है। समाज में संव्याप्त अंधपरम्पराओं और बढ़ती कुरीतियों का कारण सद्गुणों के प्रति अपनायी जाने वाली उपेक्षा की रीति–नीति को ही माना जा सकता है। सज्जन पुरूष सद्गुण सम्पन्न होते है और लोककल्याण के कार्य में सदा तत्पर रहते हैं। सज्जनों की विशेषता बताते हुए श्रीमद्भागवत में कहा गया है– 'प्रायः करके सज्जन मनुष्य लोक ताप से तप जाते है अर्थात् मनुष्यों पर विपत्ति देखकर उसको दूर करने के लिए दुःख उठाते है और दूसरों का दुःख दूर करना भगवान की परम आराधना है' (श्रीमद्भागवत पुराण, 8/7/44)। विश्व व्यवस्था, विश्व चेतना की सोचने पर सज्जनता के अतिरिक्त कुछ और नहीं रहता है। प्रकाश की अनुपस्थिति ही अंधकार है (शर्मा, 1988, पृ. 6)। कुरीतियों, मूढ़ताओं, अंधविश्वास से जूझने के लिए मनुष्य को अपने व्यक्तित्व को सद्गुण सम्पन्न बनाना चाहिए। सज्जनों को एक जुट करके दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन और सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्द्धन से जुड़े हुए रचनात्मक कार्यो को गति देकर सभ्य समाज का निर्माण करना चाहिए।

सत्संकल्प (16)– राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान् रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, सम्प्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।

एक ही आकाश के नीचे और एक ही धरती पर रहने वाले सभी मनुष्य एक ही पिता की सन्तान है। सभी के अंग अवयव एक जैसे है। मोटे तौर पर सभी के जीवन जीने की विधा एक सी है। इस प्रकार सभी परस्पर एक ही कुटुम्ब के अंग है। कौटुम्बिक एकता एवं समता को बनाए रखने में ही सच्ची मानवता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' भारतीय संस्कृति के दो प्रमुख आदर्श है। ये दोनों आदर्श मानव मात्र को जैसी प्रेरणा देते है उसे हृदयांगम करने के लिए एकता एवं समता को ही आधार बनाना होता है (ब्रह्मवर्चस, 1998र, पृ. 4.9)। वर्तमान समय में जातिवाद, लिंगभेद, भाषावाद, प्रान्तवाद, सम्प्रदायवाद की समस्याओं का प्रमुख कारण एकता एवं समता की भावना का अभाव ही है। एकता एवं समता के उच्च भावों को अपनाकर ही इन विभिन्नताओं, विचित्रताओं और विसंगतियों को निरस्त किया जा सकता है। अथर्ववेद में कहा गया है 'तुम सब एक विचार से रहो, परस्पर विरोध करके एक दूसरे से दूर न हो जाओ। एक इच्छा की पूर्ति के लिए प्रयत्न करने वाली सब प्रजाओं को सब विद्वान एकता के विचार से संयुक्त करें' (अथर्ववेद, 3/8/4)। तात्पर्य यह है कि एकता और समता के आदर्श को अपना लेने पर समस्या स्वतः समाप्त होने लगती है। जब मनुष्य 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के आधार पर समस्त प्राणियों में स्वयं को देखेगा तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम' द्वारा सम्पूर्ण वसुधा को अपना कुटुम्ब मानेगा तो उसके लिए जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, सम्प्रदाय आदि के कारण परस्पर भेदभाव करना सम्भव न रहेगा। इस प्रकार एकता एवं समता की उदात्त भावनाओं को अपना लेने पर पारस्परिक भेदभाव से उत्पन्न होने वाली समस्यायें समाप्त हो जायेगी और तब सम्पूर्ण मानव जाति सुख–शांति से रहकर, सर्वतोमुखी प्रगति कर सकेगी।

सत्संकल्प (17)– मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है, इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनायेंगे, तो युग अवश्य बदलेगा।

ईश्वर विश्व नियन्ता है और उसका ज्येष्ठ पुत्र स्वभाग्य निर्माता। उसके द्वारा किया गया आज का पुरूषार्थ कल भाग्य बनकर सामने आता है (शर्मा, 1988, पृ. 1)। इसके लिए मार्ग चयन की उसे पूरी स्वतन्त्रा मिली हुई है। उसकी विचारणा एवं क्रिया पद्धति ही उसे उत्कृष्ट और निकृष्ट बनाती है। मनुष्य के निर्धारण एवं पुरूषार्थ को चुनौती दे सकना इस विश्व में किसी के लिए भी सम्भव नहीं है (शर्मा, 1988, पृ. 1)। जीवन में विद्यमान अगणित समस्याओं का उत्पादक मनुष्य स्वयं है। इस तथ्य को स्वीकार कर यदि वह अपनी आदतों, विचारणाओं, मान्यताओं और गतिविधियों को सुधारने के लिए तत्पर हो जाये तो जीवन की उन गुत्थियों को वह स्वयं सुलझा सकता है।

आदर्श हमेशा कुछ ऊँचा होता है और उसकी प्रतिक्रिया कुछ नीची रह जाती है इसलिए आदर्श की स्थापना करने वालों को सामान्य जनता के स्तर से सदा कुछ ऊँचा रहना पड़ता है। संसार को अच्छा बनाने की इच्छा रखने वालो को, स्वयं को सदा कहीं अधिक ऊँचा बनाने का आदर्श स्थापित करना पड़ा है। उत्कृष्टता द्वारा ही श्रेष्ठता उत्पन्न हो सकती है (शर्मा, 2009, पृ. 94)। अतएव स्वयं को उत्कृष्ट बनाने के लिए प्रयत्नशील मनुष्य ही, अपने सम्पर्क में आने वाले दूसरे लोगों को श्रेष्ठ बना सकते है। उत्कृष्टता द्वारा श्रेष्ठता के अभिवर्द्धन पर ही युग निर्माण की भवितव्यता निर्भर है।

सत्संकल्प (18)– 'हम बदलेंगे–युग बदलेगा। हम सुधरेंगे–युग सुधरेगा' इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।

'मनुष्य की वास्तविक सम्पदा उसका निजी व्यक्तित्व है' (ब्रह्मवर्चस, 1998ब, पृ. 10.22)। बड़े से बड़ा परिर्वतन व्यक्तित्व निर्माण की आधार शिला पर ही सम्भव है। जिस प्रकार एक–एक ईंट के मिलने पर ही भव्य भवन का निर्माण होगा। उसी प्रकार युग–निर्माण का महत् प्रयोजन व्यक्ति निर्माण द्वारा ही सम्भव बन सकता है। युग की समस्त विषमताओं, विपन्नताओं एवं प्रतिकूलताओं को सुधारने के लिए पहले अपना सुधार करना होता

है। क्योंकि 'अपने सुधार के बिना परिस्थितियाँ नहीं सुधर सकती। अपना दृष्टिकोण बदले बिना जीवन की गतिविधियाँ नहीं बदली जा सकती' (शर्मा, 1962, पृ. 44)। मनोभूमि परिवर्तन के साथ ही युग निर्माण प्रक्रिया का शुभारम्भ होता है।

कथनी और करनी में जहाँ कही भी भेद है वहाँ सफलताएं संदिग्ध रहती है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि युग निर्माण के लिए उत्कृष्टाओं एवं आदर्शो का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करें। अनुकरण की प्रेरणा का यही सर्वश्रेष्ठ आधार है। व्यक्ति निर्माण की धुरी पर समाज निर्माण और युग का नवनिर्माण आकार लेता है। जैसे बूंद–बूंद जल के मिलने से समुद्र बनता है, उसी तरह एक–एक अच्छे व्यक्ति के मिलने से अच्छा समाज बनेगा। व्यक्ति निर्माण का व्यापक स्वरूप ही युग निर्माण का रूप लेगा (शर्मा, 2009, पृ. 5)।

निष्कर्ष

व्यक्ति निर्माण, समाज निर्माण, और युग निर्माण में मानवी जीवन की इतिश्री है। व्यक्ति निर्माण से युग निर्माण के निमित्त आचार्य श्रीराम शर्मा द्वारा दिये गये युग निर्माण सत्संकल्प के विचार वर्तमान परिस्थितियों में व्यावहारिक एवं उपयोगी है। विकास की इस बहुआयामी यात्रा में विचार शक्ति का योजनाबद्ध क्रियान्वयन करना होता है। युग निर्माण सत्संकल्प युग परिवर्तन की संकल्पना है। विचार ही अवसर को प्राप्त कर कर्म रूप में परिणत होते है। सत्संकल्प के विचार व्यावहारिक रूप में युग निर्माण का स्वरूप प्रकट करने की सामर्थ्य रखते है तथा वर्तमान समसामायिक समस्याओं के निमित्त वे ऐसे अचूक वैचारिक अस्त्र है जिनका प्रभाव चिरस्थायी है।

राकेश वर्मा, शोधार्थी, योग विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत।

सन्दर्भ सूची

अद्वैत आश्रम (2000). *विवेकानन्द साहित्य (खण्ड–3)।* कलकत्ता– अद्वैत आश्रम प्रकाशन।

अद्वौत आश्रम (2000). *विवेकानंद साहितत्य (भाग–7)।* कलकत्ता– अद्वौत आश्रम प्रकाशन।

गर्ग, प्यार (2008). *अध्यात्म दर्शन विज्ञान।* नई दिल्ली– नार्दर्न बुक सेंटर।

पण्डया, प्रणव (2006). *ऋषि–चिन्तन।* मथुरा– युग निर्माण योजना प्रेस।

पण्डया, प्रणव (जुलाई, 2010). सम्भव है अवसाद से जूझ पाना। *अखण्ड ज्योति, 7,* 27। मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

पण्डया, प्रणव (अगस्त, 2010). याद करें पुनः महर्षि की वाणी। *अखण्ड ज्योति, 8,* 26। मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

पण्डया, प्रणव (नवम्बर, 2014). सदा सकारात्मक रखें सोच। *अखण्ड ज्योति, 11,* 40। मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

परंधाम प्रकाशन (1999). *विनोबा साहित्य (खण्ड 14)।* वर्धा– परंधाम प्रकाशन।

ब्रह्मवर्चस (2015). *उज्ज्वल भविष्य की सार्थक दिशाधारा।* हरिद्वार– श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट।

ब्रह्मवर्चस (1998अ). *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय जीवन देवता की साधना–आराधना (वा.2)।* मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

ब्रह्मवर्चस (1998ब). *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय अपरिमित सम्भावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व (वा.21)।* मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

ब्रह्मवर्चस (1998स). *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण–2 (वा.29)।* मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

ब्रह्मवर्चस (1998द). *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय युगद्रष्टा का जीवनदर्शन (वा.1)।* मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

ब्रह्मवर्चस (1998न). *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय ईश्वर कौन है, कहॉ है, कैसा है? (वा.8)।* मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

ब्रह्मवर्चस (1998य). *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय प्रज्ञोपनिषद् (वा.38)।* मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

ब्रह्मवर्चस (1998र). *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय भव्य समाज का अभिनव निर्माण (वा.46)।* मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

ब्रह्मवर्चस (1998ल). *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय इक्कीसवीं सदीः नारी सदी (वा. 62)।* मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

ब्रह्मवर्चस (1998व). *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय युग निर्माण योजना–दर्शन स्वरूप व कार्यक्रम (वा.66)।* मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

यतीश्वरानन्द, स्वामी (2005). *ध्यान और आध्यात्मिक जीवन।* नागपुर– रामकृष्णमठ।

योगेश्वरानन्द, परमहंस (2002). *दिव्य शब्द विज्ञान।* नई दिल्ली– योग निकेतन ट्रस्ट।

राय, विजय कुमार (2010). *स्वस्थवृत विज्ञान।* नई दिल्ली– चौखम्भा पब्लिकेशन्स।

सरस्वती, स्वामी शिवानन्द (2008). *मानसिक शक्ति (अनुवादक श्री त्रि. न. आत्रेय)।* टिहरी– द लाइफ डिवाइन सोसाईटी उत्तराखण्ड।

शर्मा, श्रीराम (2002). *कर्मकाण्ड भाष्कर।* हरिद्वार– ब्रह्मवर्चस शांतिकुंज।

शर्मा, श्रीराम (2004). *नैतिक शिक्षा भाग–2* । मथुरा–युग निर्माण योजना प्रेस।

शर्मा, श्रीराम (2006). *स्वाध्याय और सत्संग।* मथुरा–युग निर्माण योजना प्रेस।

शर्मा, श्रीराम (2008अ). *इक्कीसवीं सदी का गंगावतरण।* मथुरा– युग निर्माण योजना प्रेस।

शर्मा, श्रीराम (2008ब). *समयदान ही युगधर्म।* मथुरा– युग निर्माण योजना प्रेस।

शर्मा, श्रीराम (जून, 1962). मानसिक स्वच्छता का महत्व। *अखण्ड ज्योति, 6,* 44। मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

शर्मा, श्रीराम (सितम्बर, 1962). युग–निर्माण सत्संकल्प। *अखण्ड ज्योति,* 9, 2। मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

शर्मा, श्रीराम (अक्टूबर, 1966). आस्तिकता का प्रतिफल। *अखण्ड ज्योति, 10,* 4। मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

शर्मा, श्रीराम (दिसम्बर, 1972). दर्शन की उपयोगिता विज्ञान से भी अधिक है। *अखण्ड ज्योति, 12,* 18। मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

शर्मा, श्रीराम (अप्रैल, 1970). विचारणा को कुमार्गगामी न बनने दें। *युग निर्माण योजना, 4,* 16। मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

शर्मा, श्रीराम (2009). *इक्कीसवीं सदी का संविधान।* मथुरा– युग निर्माण योजना प्रेस।

शर्मा, भगवती देवी (मार्च, 1988). मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं। *अखण्ड ज्योति,* 3, 1। मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

शर्मा, भगवती देवी (दिसम्बर, 1988). अपना भविष्य निर्माता मनुष्य स्वयं। *अखण्ड ज्योति, 12,* 1। मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

शर्मा, भगवती देवी (मई, 1988). अनीति त्रास ही देती है। *अखण्ड ज्योति, 5,* 52। मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

शर्मा, भगवती देवी (मई, 1988). विवेक और समर्पण। *अखण्ड ज्योति, 5,* 5–6। मथुरा– अखण्ड ज्योति संस्थान।

अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु।। **(अथर्ववेद, 3/8/4)**

आत्मनः प्रतिकुलानि परेषां न समाचरेत्। **(महाभारत, 5/15/17)**

अन्य दुःखेन यो दुःखी योऽन्य हर्षेण हर्षितः। सएवं जगतामीशो नर रूप धरो हरिः।। **(नारद पुराण पूर्वखण्ड, 7/69)**

ईशावास्यमिदं सर्वम्, यत्किंच जगत्यां जगत्। **(ईशावास्य उपनिषद–1)**

जीवेम शरदः शतम्। **(अथर्ववेद संहिता, 19/67/2)**

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। **(शिवसंकल्पोपनिषद– 1)**

तप्यन्ते लोक तापेन साधवः प्रायशो जनाः। परमाराधनं तद्धि पुरूषस्या खिलात्मनः।। **(श्रीमद्भागवत पुराण, 8/7/44)**

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या, सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। **(मनुस्मृति, 6/92)**

नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी यथा। स्वशरीरस्य मेधावी कृत्येष्ववहितोभवत्।। **(चरक सूत्र, 5/109)**

बन्ध इन्द्रिय विक्षेपो मोक्षयेषां चः संयम ।। **(श्रीमद्भागवत पुराण, 11/18/22)**

बिनु सतसंग बिवेक न होई।। **(रामचरितमानस, बालकाण्ड, 2/4)**

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। **(गीता, 2/37)**

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः। **(गीता, 17/3)**